Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : **www.shisrrj.com**
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 3
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण एवं उत्तररामचरितम् में अलंकार सौन्दर्य की तुलनात्मक मीमांसा

आशीष कुमार चतुर्वेदी
शोधच्छात्र, केन्द्रीय संकृत विश्वविद्यालय, गंगानाथ झा परिसर, प्रयागराज.

Article Info

Article History
Received : 03 May 2024
Published : 15 May 2024

Publication Issue :
May-June-2024
Volume 7, Issue 3

Page Number : 65-79

शोधसारांश- आदिकवि वाल्मीकि तथा महाकवि भवभूति दोनों ही संस्कृत-साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्रों में से हैं। दोनों ही कवियों ने उत्कृष्टतम काव्य कृतियों की रचना की है। तथा अपनी काव्यकृतियों आदिकाव्य रामायण एवं उत्तररामचरित नाटक को विभिन्न अलंकारों द्वारा शोभनीय बनाया है। दोनों महाकवियों वाल्मीकि एवं भवभूति ने अपनी कृतियों में सुन्दर अलंकार योजना का निदर्शन किया है। आदिकवि वाल्मीकि की कृति रामायण संस्कृत-साहित्य की प्रथम कृति है। अत: उसमें अलंकार इत्यादि तत्वों का प्रारम्भिक रूप दिखलाई पड़ता है। वह एक ऐसे काल की रचना है जब अलंकार विषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं थे। अतएव अलंकारों का प्रारम्भिक रूप होने के कारण रामायण में अलंकारों में जटिलता एवं संकीर्णता का समावेश नहीं हुआ है। उसमें अलंकार अत्यन्त सरल एवं सहज रूप में प्राप्त होते हैं। अलंकारों में स्वाभाविकता एवं सहजता दृष्टिगत होती है, जिसके लिए वाल्मीकि को पृथक् प्रयास नहीं करना पड़ा। महाकवि भवभूति का उत्तररामचरित उस समय की रवना है जबकि साहित्यशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। उनका स्पष्ट प्रभाव भवभूति की रचना पर दृष्टिगोचर होता है। रामायण की अपेक्षा उत्तररामचरित के अलंकारों में अधिक जटिलता एवं संकीर्णता दिखलाई पड़ती है। उत्तररामचरित में अलंकारों का परिपक्व रूप मिलता है। यद्यपि महाकवि भवभूति में कहीं-कहीं कृत्रिमता के दर्शन होते हैं।

मुख्य शब्द- श्रीमद्वाल्मीकि, रामायण, उत्तररामचरितम्, अलंकार, सौन्दर्य, संस्कृत-साहित्य, महाकवि भवभूति।

वाल्मीकि रामायण में अलंकार योजना- अलंकार भाषा शैली के विशिष्ट अवयव होते हैं, जिन्हें काव्य में विशेष गौरव प्राप्त है। इनसे अभिव्यक्ति में स्पष्टता और प्रभविष्णुता उत्पन्न होती है। भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने काव्य में इनकी महत्ता को स्वीकार किया है। आचार्य दण्डी ने अत्यन्त सरल रूप में अलंकारों की परिभाषा देते हुए कहा है-**''काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते"।** आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, 'जिस प्रकार शरीर की शोभावृद्धि के लिए आभूषणों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार अलंकार काव्य के सौन्दर्य-वर्धक तत्व होते हैं।'

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

'काव्यस्य शब्दार्थो शरीर्म, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत् दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थान विशेषवत्, अलंकाराश्च कटककुण्डलादिवत् ।"

सर्वप्रथम भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटकोपयोगी चार अलंकारों का निर्देश किया है। वे उपमा अलंकार, रूपक अलंकार, दीपक अलंकार तथा यमक अलंकार हैं। ये चारों ही अलंकार अत्यन्त प्राचीन अलंकार हैं। ये ही अलंकार रूप वाहुल्य से बढ़ते गये तथा आचार्य जगन्नाथ के समय तक उनकी संख्या_ तक पहुंच गई, जो कि काव्य में अलंकारों की महत्ता के तथ्य को प्रकट करती है।

अलंकारों को साधारणतः दो वर्गो में विभक्त किया जाता है शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। शब्दालंकार शब्द के संगीत-धर्म से सम्बन्धित है तथा अर्थालंकार काव्य के चित्र-धर्म से सम्बन्धित हैं।' यहां पर वाल्मीकि रामायण तथा उत्तररामचरित में प्रयुक्त शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों पर विचार किया जा रहा है ।

वाल्मीकि रामायण में अलंकार- वाल्मीकि रामायण एक ऐसे काल की रचना है, जिस काल में अलंकार विषयक कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तथा क्रमबद्ध विकसित अलंकार शास्त्र का भी अभाव है । रामायण की भाषा अत्यन्त अलंकृत है । वाल्मीकि रामायण में रस अलंकार आदि काव्य के तत्वों का प्रारम्भिक रूप उपलब्ध होता है। अतः अलंकारों के प्रारम्भिक विकास में जटिल अलंकारों की अल्पता होना स्वाभाविक है। वाल्मीकि रामायण में अधिकांशतः सरल एवं स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

रामायण में शब्दालंकार- वाल्मीकि रामायण में अनेक शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है, जिनमें अनुप्रास अलंकार, यमक अलंकार तथा श्लेष अलंकार मुख्य हैं। उनमें भी अनुप्रास अलंकार कवि का अत्यन्त प्रिय अलंकार दिखलाई पड़ता है।

1. अनुप्रास अलंकार -

समान वर्णों के न्यास को अनुप्रास कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार

'अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।"

स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद या पदांश के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि स्वरों की समानता हो चाहे न हो, परन्तु अनेक व्यंजन जहां एक से मिल जायें वहां अनुप्रास अलंकार होता है।

वाल्मीकि रामायण में अनुप्रास अलंकार की छटा एवं अनवरत प्रवाह दृष्टिगत होता है। काव्य के प्रारम्भ में आदि पंक्ति ही अनुप्रासयुक्त प्रवाह से आरम्भ होती है--

'तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।

यहां त, व, य इत्यादि व्यंजनों की सुन्दर आवृत्ति हो रही है। किष्किन्धाकांड में अनुप्रास अलंकार का अत्यन्त उत्तम उदाहरण उपलब्ध होता है। 'सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः । यहां सभी पदों के आरम्भ में कवि ने बिना किसी अर्थालंकार के अयोध्या का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित किया है-

सारथे ! पश्य विध्वस्ता साऽयोध्या न प्रकाशते ।

निराकारा निरानन्दा दीना प्रतिहतस्वरा ।।

यहां करुणरस के अनुकूल वर्णों के विन्यास की सुन्दर-योजना हुई है। उत्तरकाण्ड में अशोकवाटिका का वर्णन भी 'अनुप्रास अलंकार' से अलंकृत होकर शोभनीय हो गया है।

सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च।

दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।।

यहां अनेक वर्णों की आवृत्ति दृष्टिगत हो रही है। वैसे तो रामायण में अनुप्रास अलंकार के उदाहरणों का बाहुल्य है, परन्तु सुन्दरकाण्ड के चन्द्रिका वर्णन:" तथा किष्किन्धाकाण्ड के वर्षा वर्णन में इसकी छटा दर्शनीय है।

२.यमक अलंकार- सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वरव्यंजनसंहते: । क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।।"

यदि अर्थवान् हो, तो भिन्न अर्थ वाले, स्वर व्यंजन समुदाय की उसी कम से आवृत्ति को यमक अलंकार कहते हैं।

आदिकवि वाल्मीकि ने अपने काव्य को संगीतमय बनाने के लिए यमक अलंकार का यत्र-तत्र प्रयोग किया है। उनकी यमक-योजना प्रयासजन्य न होकर स्वाभाविक बन गई है। यमक अलंकार के जटिल रूप का रामांयण में नितान्त अभाव दिखाई पड़ता है। सुन्दरकाण्ड में यमक अलंकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस काण्ड का पाचवां और सातवां सर्ग समस्त पादान्त यमक की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है-

स्थित: ककुद्मानिव तीक्ष्णश्रृङ्गो महाचल: श्वेत इवोर्ध्वश्रृंङ्ङ्गः ।

हस्तीव जाम्बूनदबद्धश्रृङ्ङ्गो विभाति चन्द्र: परिपूर्णश्रृङ्गः ।।

इस श्लोक के चारों चरणों के अन्त में 'श्रृङ्ङ्ग' पद की आवृत्ति हुई है और प्रत्येक चरण के श्रृङ्ङ्ग का अर्थ भिन्न है। श्रृङ्ङ्ग पद के चारों अर्थ क्रमशः सींग, शिखर, हाथी दांत और कला हैं।

रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति।

रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति दृढ़ानि चापानि च विक्षिपन्ति ।।

विक्षिपन्ति के कमशः अर्थ इस प्रकार है-पीटते थे, रख देते थे, निर्माण करते थे और खीचां करते थे। इस प्रकार यहां यमक अलंकार है। सार्थक व निरर्थक दोनों प्रकार के पदों की आवृत्ति का उदाहरण निम्नलिखित है-

'रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने ।'

यहां द्वितीय पद 'रामस्य' सार्थक है।

एक अन्य उदाहरण

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोष: प्रवृद्धरक्ष: पिशिताशदोष: ।

रामाभिरामैरितचित्तदोष: स्वर्गप्रकाशो भगवान्प्रदोष: ।।

यहां प्रथम तीन चरणों में आवृत्त 'दोष' पद के क्रमश अंधकार, विकार और प्रेम अर्थ हैं। परन्तु चतुर्थ चरण में दोष शब्दांश होने से निरर्थक है।

3. श्लेष अलंकार- 'श्लिष्टै: पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते ।'

शिलष्ट पदों से अनेक अर्थों का अभिधान होने पर श्लेषालंकार होता है। अर्थात् यदि पदों के अनेक वाच्य अर्थ हों और वे वाच्य रूप में ही प्रकट हो रहे हों तो वहां श्लेष अलंकार होता है।

वाल्मीकि रामायण में श्लेष अलंकार का प्रयोग कम ही हुआ है। कहीं-कहीं अनेकार्थक शब्दों के प्रयोग में श्लेष का सरलतम रूप में निबन्धन हुआ है। काव्य में दुरूहता उत्पन्न करने वाले श्लेष कां प्रयोग कवि ने नहीं किया है। काव्य में उपमा, समासोक्ति आदि अलंकारों में प्रयुक्त शिलष्ट विशेषणों से वाल्मीकि की श्लेष निबन्धन-योजना का परिचय मिलता है।

तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघव: ।

सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा ।।

यहां 'चक्र' शब्द से सेना, सेनाव्यूह, भंवर, सार्वभौमता आदि अनेक अर्थों की प्रतीत हो रही है, अत: 'चक' शब्द में श्लेष अलंकार है।

शरत्कालं प्रतीक्षिष्ये स्थितोऽस्मि वचने तव । सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन् ।।

प्रस्तुत श्लोक में 'प्रसाद- शब्द में शब्द श्लेष है। उसके कृपा और स्वच्छता दो अर्थो की प्रतीति वाच्य रूप में हो रही है।

चंचच्चन्द्रकर स्पर्शहर्षोन्मीलिततारका । अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयम्वरम् ।।

यहां 'तारका' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग हुआ है। जिसका प्रयोग नक्षत्र और आंत पुतली अर्थ में हुआ है। अतएव यह शब्दश्लेष अलंकार का उदाहरण है। इनके अतिरिक्त भी वाल्मीकि रामायण में यत्र-तत्र इसी प्रकार के श्लिष्ट प्रयोग मिलते हैं।

5. पुनरुक्तवदाभास अलंकार - आपाततोयदर्थस्य पौनरुक्त्येन भासनम् । पुनरुक्तवदाभास: स भिन्नाकारशब्दग: ।।

ऊपर से देखने पर जहां अर्थ की पुनरुक्ति की प्रतीति होती हो, वहां भिन्न स्वरूपवाले समानार्थक शब्दों में 'पुनरुक्तवदाभास' नामक अलंकार होता है। यह भिन्नाकार शब्द निरर्थक और सार्थक दोनों प्रकार के हो सकते है। वाल्मीकि रामायण में यह अलंकार अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है। उनमें से कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं --

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहुन्यपि साधयेत् । पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ।।

यहां 'कार्ये' एवं 'कर्मणि' दोनों पदों का आकार भिन्न है परन्तु पढ़ने मात्र से पुनरुक्त से प्रतीत होते हैं। किन्तु शेष पदों का अर्थ समझ लेने पर इनका पुनरुक्ति दोष दूर हो जाता है। 'कार्ये' का अर्थ यहां करणीय से है तथा 'कर्मणि का तात्पर्य कार्य संज्ञा से है। अर्थात् करणीय कार्य यह अर्थ है।

'क्षितिक्षमा पुष्कर-संनिभेक्षणा।'

यहां क्षिति एवं क्षमा दोनों का अर्थ पृथ्वी है, अत: पुनरुक्ति की प्रतीति होती है। किन्तु यहां 'क्षमा' का अर्थ क्षमा करने वाली होने से आभासित पुनरुक्ति विलीन हो जाती है। अतएव पुनरुक्तवदाभास अलंकार है।

6.वक्रोक्ति अलंकार-

अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि ।

अन्य: श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा ।।

जहां किसी के अन्यार्थक वाक्य को कोई दूसरा पुरुष श्लेष से या काकु से अन्य अर्थ में लगा दे, वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है।

मन्ये प्रतिविशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मण सारिका। यदस्या: श्रूयते वाक्यं शुकपादमरेर्दश।।"

तिलक टीकाकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है - **अरेर्विडालस्य पाद हे शुक, दशेत्यर्थकतया लोकप्रसिद्धमरेर्भत्यपालयितु: कौसल्या: शत्रो: पादं दशेत्यर्थकतया रामेण योजितमिति वक्रोक्तिरलंकार: ।"**

यहां वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त शब्दालंकारों का संक्षेप में विवरण दिया गया है। अन्य भी बहुत से स्थलों पर शब्दालंकारों का यथोचित प्रयोग रामायण में हुआ है जो अत्यन्त स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक है।

रामायण में अर्थालंकार – शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों की सुषमा अपने नैसर्गिक रूप में काव्य को अधिक भूषित करती है। अर्थालंकारों का सम्बन्ध शब्द के चित्रधर्म से होता है। काव्य में अलंकरण के साथ-साथ चित्रमयी इन्द्रियग्राह्यता

भी हो जाती है तथा विशेषोक्ति का कार्य भी करती है। आदिकवि वाल्मीकि ने अपनी अद्वितीय काव्यकृति रामायण में सरत एवं ललित शब्दों में विषय का चित्रात्मक वर्णन किया है, जो सहज ही मन को आकृष्ट कर लेता है। वाल्मीकि ने जिन मूल अलंकारों का आश्रय लेकर अपने अलंकारों का विकास किया है वे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि हैं।

1. उपमा अलंकार -

साध्यं वाच्यमवैधर्ण वाक्यैक्य उपमा द्वयो: ।"

एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य रहित, वाच्य-सादृश्य को उपमा अलंकार कहते हैं। अर्थालंकारों में उपमा अलंकार का महत्वपूर्ण स्थान है। यह इसी सादृश्यमूलक अलंकारों का उद्भावक है। इसकी प्रधानता बतलाते हुए राजशेखर ने इसे कविवंश की माता कहा है-

अलंकारं शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदम् । उपमा कविवंशस्य मातेवेति मतिर्मम ।।

आदिकवि वाल्मीकि को भी यह उपमा अलंकार अन्यन्त प्रिय प्रतीत होत्ता है। उपमा अलंकार का रामायण में सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। रामायण में प्रयुक्त अलंकारों की समस्त संख्या की लगभग दो तिहाई संख्या उपमाओं की ही है।" आदिकवि ने यह उपमायें जनसामान्य के प्रत्येक क्षेत्र से ही ग्रहण की हैं। अतएव वाल्मीकि रामायण की उपमाओं का क्षेत्र अत्यन्त विकसित है। उनमें कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं--

रावण द्वारा हर कर ले जायी जाती हुई हेमवर्णा सीता, जैसे सोने की कांची, नील वर्ण हाथी पर शोभायमान होती है, उसी प्रकार नीलांग रावण पर शोभायमान हुई।

सा हेमवर्णा नीलांगं मैथिली राक्षसाधिपम्। शुशुभे कांचनी कांची नीलं गजमिवाश्रिता ।।"

यहां सीता के सौन्दर्य का उत्कर्ष व्यंजित हो रहा है। उत्तरकाण्ड में राम के कीडाकानन की शोभा की उपमा इन्द्र के नन्दन वन तथा चैत्ररथ वन के सौन्दर्य से दी गई है-

नन्दनं हि यथेन्द्रस्य ब्राह्मं चैत्ररथं यथा ।। तथाभूतं हि रामस्य काननं संनिवेशनम् ।

वाल्मीकि रामायण में लम्बी-लम्बी मालोपमाओं का प्रयोग भी हुआ है। अशोक वाटिका में पति के विरह में दिन काटती हुई सीता का आदिकवि ने मालोपमा द्वारा अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। वसनों की मलिनता और शरीर की कृशता से सीता का सौन्दर्य क्षीण हो गया था। अपार शोक सागर में डूबी विरहदग्धा वैदेही की इस अवस्था को अनेक उपमानों द्वारा दिखलाया गया है --

तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव ।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ।।
सोपसर्गा यथा सिद्धि बुद्धिं सकलुषामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्ति निपतितामिव ।।"

यहां स्मृति, ऋद्धि, श्रद्धा, आशा, सिद्धि, बुद्धि और कीर्ति सात उपमानों से एक उपमेय का सादृश्य प्रस्तुत किया गया है। कवि वाल्मीकि सिंहासन पर विराजमान राम एवं सीता में वसिष्ठ एवं अरुन्धती की सी शोभा देखते हैं-

स तया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह। अरुन्धत्या इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा ।।"

भ्रातृ विरह के कारण संतप्त भरत के सम्पूर्ण शरीर से शोकाग्नि से उत्पन्न स्वेद उसी प्रकार बहने लगा, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से पिघलकर हिमालय से वर्फ गिरता है--

प्रसुत: सर्वगात्रेभ्य: इवेदं शोकाग्नि-संभवम्। यथासूर्याग्निसंतप्तो हिमवान्प्रसृतो हिमम् ।।

शोकाग्नि में सूर्याग्नि के समान दाहकता दिखाना इस उपमा का प्रयोजन है। शोकाधिक्य के चमत्कारी वर्णन में उपमा अलंकार है।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि रामायण की उपमायें भावोत्कर्ष में पूर्ण सक्षम हे तथा उनकी साधर्म्ययोजना भी पूर्ण संश्लिष्ट है। कल्पना यथार्थ, सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति आदि काव्य शैली के प्रमुख तत्वों के सन्निवेश से वाल्मीकीय उपमाओं की चारुता साहित्यकारों के लिये अनुकरणीय बन गई है।

2.रूपक अलंकार-

'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे ।'

निरगड्नव अर्थात् निषेधरहित विषय (उपमेय) मे रूपित (अपह्नवभेद उपमान) के आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहां भेदरहित उपमान का उपमेय में आरोप हो, परन्तु उपमेय के स्वरूप का निषेधक कोई शब्द न हो वहां रूपक अलंकार होता है।

वाल्मीकि रामायण में उपमा अलंकार की अपेक्षा रूपक अलंकार का कम प्रयोग हुआ है। उपमा के समान रूपक भी प्राय: प्रकृति से अर्थात् समुद्र, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी इत्यादि से लिये गए हैं। सांग रूपकों का प्रयोग अधिक हुआ है। यत्र-तत्र निरंग-रूपक के तदाहरण भी मिलते हैं। रूपक अलंकार के कुछ उदाहरणों को यहां उद्धृत किया जा रहा है--

किष्किन्धाकाण्ड में कवि ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण करते हुए, वसन्त के उपर अग्नि का आरोप किया है।

अशोकस्तवकांगार: षट्पदस्वननि: स्वन:। मां हि पल्लवताम्रार्चि वसन्ताग्नि: प्रधक्ष्यति।।"

विरही राम को अशोक के स्तबकरूपी अंगारों वाली, भ्रमर गुंजन रूपी स्वर वाली, ताम्र पल्लव रूपी ज्वालाओं वाली वसन्ताग्नि भस्म कर डालेगी। यहां वसन्त के ऊपर अग्नि का आरोप प्रधान रूपक है। उसके उपपादन के लिए अंग रूप में अशोक स्तबकों पर अंगारों का, भ्रमर गुंजन पर स्वर का तथा पल्लवों पर ज्वालाओं का आरोप होने से सांग रूपकालंकार है।

विषादनकाध्युषिते परिखासोर्मिमालिनि । किं मां न त्रायते मग्नां विपुले शोकसागरे ।।

अरण्यकाण्ड में उल्लिखित यह शूर्पणखा की उक्ति है, यहां अमूर्त में मूर्त का आरोप हुआ है। प्रधान रूपक 'शोक सागर' है। विषाद में मगरों का आरोप तथा त्रास में लहरों का आरोप अंगभूत रूपक है। मालोपमा के समान रामायण में लम्बे-लम्बे रूपकालंकारों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे आकाश पर सागर का आरोप-

भुजंगयक्षगन्धर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् ।।
सचन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम् ।
तिष्यश्रवणकादम्बमभ्रशैवलशाद्वलम् ।।
पुनर्वसुमहामीनं लोहितांगमहाग्रहम् ।
ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलासितम् ।
वातसंघातजालोर्मिचन्द्रांशुशिशिराम्बुमत् ।
हनुमानपरिश्रान्त: पुप्लुवे गगनार्णवम् ।"

यहां आकाश और उसके अंग, प्रत्यंगों पर सांग सागर का आरोप किया गया है। चन्द्र, सूर्य तिष्य, श्रवण नक्षत्र, मेघ आदि आकाश के अंग हैं। उन पर कम से कुमुद, जलमुर्ग और सिवार आदि सागर के अंगो का आरोप किये जाने से यहां सावयव रूपकालंकार है।

किष्किन्धाकाण्ड में वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं-

सन्ध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वपि च पाण्डुभिः । स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ।।

आकाश ने मेघ रूपी वस्त्र के टुकड़ों से मानों अपने घावों पर पट्टियां बांध रखी हैं। यहां 'अभ्रपटच्छेदैः' में निरंग रूपक है। मेघ पर वस्त्र का आरोप किया गया है। उसके
उसके अंग रुप में कोई अन्य रुपक नहीं आया है।

3.उत्प्रेक्षा अलंकार- भवेत्सम्भावानोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।।

किसी प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत के रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं । वाल्मीकि रामायण में उत्प्रेक्षा अलंकार का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है। वन, पर्वत, पादप, सागर, नदी, आकाश आदि अनेक प्राकृतिक वस्तुओं में हंसना, सोना, अध्ययन, तर्जन पार्तन तथा गान करना आदि कियाओं की संभावना की गई है। प्रकृति पर मानवीय क्रिजनों का आरोग कर वाल्मीकि ने प्रकृति और मानत में सादात्य स्थापित किया है। वाल्मीकि रामायण में पम्पा-सरोवर का वर्णन करते हुए आदि कवि ने अत्यन्त उत्कृष्ट उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया है

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मरुतः । कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः ।।"

मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान् । शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः ।।

पम्मा सरोवर के समीप वायु हिलाये जाने के कारण वृक्षों से गिरते हुए पुष्पों को देखकर कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानों वासन्तिक पवन पुष्पों के साथ कीड़ा कर रहा है, पहाड़ की कन्दराओं से निकल कर वृक्षों को नचाता हुआ मत्त कोयलों के द्वारा मानों मधुर गान कर रहा है। यहां वायु में कीड़ा करने और गान करने की संभावना किये जाने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। कामी जनों के शोक का वर्धन करने वाला अशोक वृक्ष राम को तर्जित करता हुआ सा प्रतीत होता है-

कामिनामत्यन्तमशोकः शोकवर्धनः ।
स्तबकैः पवनोत्क्षिप्तेतैस्तर्जयन्निव मां स्थितः !!"

यहां पर वृक्ष में तर्जन की सम्भावना किये जाने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार हैं

4.स्वभावोक्ति अलंकार - 'स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।'

दुरुह अर्थात् कविमात्र से ज्ञातव्य जो बच्चे आदि की चेष्टायें या उनके स्वरूप वर्णन को स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं। 'प्राकृतिक दृश्यों का चमत्कारी परन्तु स्वाभाविक वर्णन भी स्वभावोक्ति अलंकार के अन्तर्गत आता है।

वाल्मीकि रामायण में स्वभावोक्ति अलंकार का प्रचुर वर्णन मिलता है। स्वभावोक्ति का जन्मदाता प्रायः आदिकवि वाल्मीकि को ही माना जाता है। रामायण में अनेक स्थलों पर पशु-पक्षियों की स्वाभाविक कियाओं एवं रूप को तथा प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। ऋतु-वर्णन में पर्वत, कन्दरा, पहाड़ी नदी, वर्षाकालीन बादल, वृक्षों इत्यादि के स्वाभाविक चित्रण में स्वभावोक्ति अलंकार है। उनमें से कुछ मनोहारी उदाहरण दिये जा रहे हैं
विभिन्न पक्षियों द्वारा जल पीने का अत्यन्त सुन्दर चित्रण कवि कर रहे हैं --

मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वे सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ।।"

यहां पक्षियों की जलपान किया का अत्यन्त स्वाभाविक दृश्य उपस्थित होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है। इसी प्रकार गंगा की धारा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण आदि कवि वाल्मीकि ने किया है-

क्वचिद्दुततरं याति कुटिलं क्वचिदायतम् ।
विनतं क्वचिदुद्धूतं क्वचिद्याति शनैः शनैः ।।

सलिलेनैव सलिलं क्वचिदभ्याहतं पुनः ।

मुहुरूर्ध्वपथं गत्वा पपात वसुधां पुनः ।।*.

यहां गंगा के प्रवाह का अत्यन्त मनोहारी एवं स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है।

5.निदर्शना अलंकार-

संभवन्वस्तुसंबन्धो संभवन्वापि कुत्रचित् । यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना।"

जहां वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव (अबाधित) अथवा असम्भव (बाधित) होकर उनके बिम्बप्रतिबिम्बभाव का बोधन करे वहां निदर्शना अलंकार होता है।

वाल्मीकि रामायण में निदर्शना-अलंकार के अनेक प्रयोग मिलते हैं। जैसे अरण्यकाण्ड में रावण द्वारा सीता से अपनी अग्रगहिणी बनने की याचना करने पर सीता जो प्रत्युत्तर देती है वह निदर्शना अलंकार का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है-

अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ।

रामस्य सदृशीं भार्या योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि:।।"

प्रस्तुत पद्य में दो वाक्य हैं, जिनके स्वतन्त्र अर्थ में कोई वमत्कार नहीं है। जब उनका उपमा में पर्यवसान होता है, तब चमत्कार की उत्पत्ति होती है। अत: यहां वाक्यार्थ निदर्शना अलंकार है। रामायण में माला निदर्शना के उदाहरण भी मिलते हैं।

6.अर्थान्तरन्यास अलंकार- सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि कार्य च कारणेनेदं कार्येण च समर्थते। साधर्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः ।[२३]

जहां विशेष से सामान्य या सामान्य से विशेष अथवा कारण से कार्य या कार्य से कारण साधर्म्य के द्वारा अथवा वैधर्म्य के द्वारा समर्थित होता हो उसे अनर्थान्तरन्यास अलंकार कहते हैं। वह उक्त रीति से आठ प्रकार का होता है।

वाल्मीकि रामायण में अर्थान्तरन्यास अलंकार का भी पर्याप्त रूप में सुन्दर प्रयोग मिलते है:। सामान्य से विशेष का साधर्म्य से समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास का प्रयोग अधिक हुआ है। उदाहरणार्थ-

भरतस्या सामीपे तु नाहं कथ्यं कदाचन । ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।।"

गह राम की सीता के प्रति उक्ति है कि 'तुम भरत के समीप कभी मेरी प्रशंसा न करना, क्योंकि समृद्धिशाली पुरुष अन्य व्यक्ति की स्तुति सहन नहीं कर पाते हैं। यहां पूर्वार्द्ध में स्थित विशेष का उत्तरार्ध में स्थित सामान्य से समर्थन किया गया है।

हुआ है-- कुछ स्थलों पर विशेष से सामान्य के समर्थन के उदाहरणों का प्रयोग भी

सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः । यत्राहमेवं परिभर्त्समाना जीवामि यस्मात्क्षणमप्यपुण्या ।।"

हरण के पश्चात् की सीता की यह उक्ति है। उत्तरार्ध में स्थित 'इस प्रकार तिरस्कृत हुई अभागिन में क्षण भर भी कैसे जी सकती थी' इस विशेष वाक्य द्वारा पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त 'बिना काल आये कोई नहीं मरता है' इस सामान्य वाक्य का समर्थन हो रहा है। अत: अर्थान्तरन्यास अलंकार का उदाहरण है।

7.तुल्ययोगिता अलंकार -

पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत् ।

एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदातुल्ययोगिता ।।

केवल प्रकृत या केवल अप्रकृत पदार्थों में एक धर्म के सम्बन्ध का नाम 'तुल्ययोगिता' है। तुल्ययोगिता अलंकार का भी समुचित प्रयोग वाल्मीकि रामायण में हुआ है। उनमें से कुछ उदाहरणों को यहां निर्दिष्ट किया जा रहा है--

मेघाः समुन्द्धतसमुद्रनादा महाजलोधैर्गगनावलम्बा ।

नदीस्तटकाति सरांसि वापीर्मही च कृत्स्नामपवाहयन्ति ।।"

वर्षा ऋतु में बादल नदियों, तालाबों आदि सभी को जलपूर्ण कर देता है। उसी का सुन्दर वर्णन यहां हुआ है। 'जल से पूर्ण करना' साधारण धर्म है। इस एक धर्म का सम्बन्ध नदी, तटाक, सर, वापी, मही आदि अनेक पदार्थों से होने के कारण यहां तुल्ययोगिता अलंकार है।

तुल्ययोगिता अलंकार एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है-

दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च।

अर्चीमभूषणानां च प्रदीप्तेत्ययमन्यत ।।"

रावण की शयनशाला हनुमान को दीपों के प्रकाश से, रावण के तेज से तथा भूषणों की चमक से प्रदीप्त सी प्रतीत हो रही है। सभी प्रस्तुत हैं तथा 'प्रदीप्त' साधारण धर्म है। अतएव प्रस्तुत पद्य में तुल्ययोगिता अलंकार है।

8.भान्तिमान् अलंकार- साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भान्तिमान् प्रतिभोत्थितः ।।

सादृश्य के कारण अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को, यदि वह कवि की प्रतिमा से उहंकित हो, भ्रान्तिमान् अलंकार कहते हैं।"

वाल्मीकि ने कुछ भी स्थलों पर भान्तिमान अलंकार प्रयुक्त किया है। उसका भी कोई चमत्कारी प्रयोग नहीं मिलता है। उदाहरणार्थ --

मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।

युद्धाभिकामः प्रतिनादशंकी मत्तो गजेन्द्रः प्रतिनिवृत्त ।।"

मेघगर्जन में प्रतिद्वन्द्वी हाथी के नाद की भ्रान्ति हो रही है। अत. भ्रान्तिमान् अतकार है।

9.काव्यलिंग अलंकार- हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते।

वाक्यार्थ अथवा पदार्थ जहां किसी का हेतु हो वहां काव्यलिंग अलंकार होता है। वाल्मीकि ने रामायण में इस अलंकार का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। उनमें से कुछ स्थलों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विनाशे बहवो दोषा जीवन्प्राप्नोति भद्रकम्। तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः।।'

यह पवनपुत्र हनुमान की उक्ति है कि 'मेरे जीवित रहने पर ही रामादि का संगम संभव होगा।' प्राणों को धारण करने का कारण कल्याण की प्राप्ति बताये जाने से काव्यलिंग अलंकार है।

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।

रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ।।

राजा दशरथ की यह उक्ति है, उनको कौसल्या के दिखाई न देने का कारण है कि उनकी राम के पास गई दृष्टि वापस नहीं लौटी है। विशिष्ट चमत्कार की प्रतीति होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

10.अप्रस्तुत प्रशंसा- क्वचिद्विशेषं सामान्यात्सामान्यं वा विशेषतः।कार्यान्निमित्तं कार्यं च हेतोरथ समात्समम्।। अप्रस्तुतात्प्रस्तुतं चेद् गम्यते पंचधा ततः ।।अप्रस्तुतप्रशंसा स्याद् ।"

अप्रस्तुत सामान्य से प्रस्तुत विशेष जहां व्यंग्य होता हो, अथवा अप्रस्तुत विशेष से प्रस्तुतसामान्य सूचित होता हो, या अप्रस्तुत कार्य से प्रस्तुत कारण द्योतित होता हो, अथवा अप्रस्तुत कारण से प्रस्तुत कार्य व्यंजित होता हो, या अप्रस्तुत समान वस्तु से प्रस्तुत किसी समान वस्तु का व्यंजन होता हो तो अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है। (उक्त रीति से पांच प्रकार का होता है।)

वाल्मीकि रामायण में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कवि ने कुछ पद्यों में इस अलंकार का सुन्दर निबन्धन किया है।उदाहरणार्थ–

क्रीड़न्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यशः ।

हंसी सा तृणमध्यस्थं कथं द्रक्ष्येत मद्गुकम् ।।

यहां रावण की भर्त्सना करते हुए सीता कहती है कि 'राजहंस के साथ कमलों में सदा कीड़ा करने वाली हंसी तृणों के बीच बैठे हुए जल–काक को कैसे देख सकती है। यहां राजहंस, हंसी तथा जलकाक अप्रस्तुत हैं। इनमें कम से राम, सीता तथा रावण की प्रतीति हो रही है। इन प्रस्तुतों के निबन्धन से काव्य में बमत्कार आ गया है, अतः यहां सादृश्य पर आध् पारित अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

11.विशेषाक्ति अलंकार - सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।

हेतु के रहते हुए भी फल के न होने पर विशेषोक्ति अलंकार होता है। वाल्मीकि रामायण में करुणभाव को तीव्र करने के लिये विशेषोक्ति अलंकार की योजना की गई है–

हृदयं सुस्थितं मह्यं दृष्टवा निपतितं भुवि।यन्न शोकाभिसन्तप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा।।'

यह बालि की मृत्यु होने पर विलाप करती हुई तारा की उक्ति है। यहां पति का भूमि पर गिरना रूप कारण के होते हुए भी हृदय के टुकड़े होना रूप कार्य की उत्पत्ति नहीं हो रही। कार्य की अनुत्पत्ति का कारण हृदय की कठोरता बतलाया गया है, अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

12.दृष्टान्त अलंकार – 'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् ।""'उपमान, उपमेय और उनके साधारण पनि भात होने पर**न** अलंकार में दोनों वालय निरपेक्ष होते हैं तथा प्रतिनियमिद्धतीन है। वाल्मीकि रामायण के कुछ पयों में दृष्टान्त अलंकार का लक्षण पति होता है।यथा–

अभिजातं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव न। न हि निम्बात्प्रवेत्धोद्रं लोके निगदितं वचः।।

यहां दोनों वाक्य निरपेक्ष है। उनमें विम्बप्रतिविम्व भाव भी विद्यमान है। 'नीम के वृत से शहद नहीं निकलता' इस प्रसिद्ध वस्तु को प्रतिविम्व रूप में गृहीत किया गया है। अंतः दृष्टान्त अलंकार है।

13/14.संसृष्टि और संकर अलंकार- यद्येत एवालंकारः परस्परविमिश्रिताः ।। तदा पृथगलंकारी संसृष्टिसंकरस्तथा ।"

'जहां' ये सब अलंकार आपस में मिले हों वहां संसृष्टि और संकर नामक दो पृथक–पृथक अलंकार होते हैं। एक ही पथ में जहां अनेक अलंकार परस्पर निरपेक्ष रूप में स्थित होते हैं वहां संसृष्टि अलंकार होता है।" वाल्मीकि रामायण में इन 'अलंकारों के प्रयोग कम ही हुए हैं। वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त संसृष्टि अलंकार का उदाहरण–

कुलस्य त्वभावाय कालरात्रिरिवागता । अंगारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान् ।।"

यहां पूर्वार्द्ध में 'कालरात्रिरिव' में उपमा अलंकार है। तथा उत्तरार्द्ध में 'अंगार' उपमान के द्वारा कैकेयी उपमेय का निगरण होने से अध्यवसानरूपा अतिशयोक्ति अलंकार है। अतएव दो अर्थालंकारों की परस्पर निरपेक्ष रूप से स्थिति में संसृष्टि अलंकार है। संसृष्टि अलंकार का एक अन्य उदाहरण –

प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः । क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ।।

यहां सागर वर्णन में दो उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग हुआ है। उत्प्रेक्षाओं की निरपेक्ष स्थिति में संसृष्टि अलंकार है। एक ही पद्य में अनेक अलंकारों की सापेक्ष स्थिति जहां होती है, वहां "संकर अलंकार' होता है।"

वाल्मीकि रामायण में संकर अलंकार के प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं। उनमें कुछ निम्नलिखित हैं–

मेघकृष्णाजिनघरा धारायज्ञोपवीतिनः । मारुतापूरितगुहा प्राधीता इव पर्वताः ।।"

इस पद्य में मेघ में कृष्णाजिन और धारा में यज्ञोपवीत का आरोप होने से रूपक अलंकार है। 'प्राधीता इव पर्वताः' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। यहां रूपक अलंकार का उत्थापक होने के कारण उसका अंग है। मेघ में कृष्णाजिन और धारा में यज्ञोपवीत के आरोप के कारण ही पर्वतों में अध्ययन करने की सम्भावना की गई है। अतः रूपक के बिना उत्प्रेक्षा की सिद्धि नहीं होती। रूपक उत्प्रेक्षा का पोषक एवं उपस्कारक है। अतः इस पद्य में संकर अलंकार है।

सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् । विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिवं प्रकाशते ।।"

प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार प्रमुख है, तथा समासोक्ति अलंकार उपमा का उपस्कारक बनकर आया है। अतः दोनों में अंगागिभाव संकर अलंकार है।

इन अलंकारों के अतिरिक्त रामायण में अन्य भी बहुत से अलंकारों का प्रयोग गौण रूप से हुआ है। जिनमें उपमा और रूपक से थोड़ा भेद रखने वाले अनन्वय, उपमेयोपमा, अपहनुति आदि अलंकार हैं। शूर्पणखा प्रकरण में वैषम्यमूलक विषय अलंकार का प्रयोग मिलता है, तथा अन्य स्थलों पर एकावली, परिकर, परिसंख्या, सहोक्ति, दीपक, आदि अनेक अलंकारों के प्रयोग मिलते हैं।

वाल्मीकि रामायण में प्राप्त अलंकारों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में प्रायः मुख्य–मुख्य सभी अलंकार विद्यमान हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा के निबन्धन में कवि को विशेष सफलता मिली है। निदर्शना, अप्रस्तुत प्रशंसा, विशेषोक्ति, तुल्ययोगिता आदि अन्य अलंकारों का प्रयोग भी प्रकरण एवं रसानुकूल होने से प्रभावोत्पादक है। रामायण की अलंकार–योजना आदिकवि वाल्मीकि की कलात्मक अभिरुचि प्रकट करती है। अलंकारों के संस्कार से हीन वाणी उन्हें सुन्दर प्रतीत नहीं होती है। उनका यह भाव निम्न उपमा से स्पष्ट होता है––

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम् ।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरे गताम् ।।

उत्तररामचरित में अलंकार-योजना- उत्तररामचरित के प्रणेता महाकवि भवभूति ने अपनी कवितावनिता को विभिन्न अलंकारों से सजाया संवारा है। उनकी रचनाओं में अलंकार की सुन्दर छटा छिटक रही ने यधावसर उवित अलंकारों का प्रयोग कर है। किया है। अतएव उनके अलंकार कविता–कागिनी के अंग बन गये हैं उसके साथ पूर्णतया घुलमिल गये है। भवभूति ने एक दक्ष कलाकार के समान अलंकारों का प्रयोग किया है। कवि का भाव और भाषा पर ऐसा असाधारण अधिकार है कि अलंकार स्वतःया किया जाते हैं। अलंकारों के लिए उन्हें प्रयास नहीं करना पड़दा है। अपनी कृति में उन्होने शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में भवभूति ने अनुप्रास की ओर विशेष रुचि दिखलाई है। परन्तु श्लेष

जैसे 'कविप्रिय' अलंकार का उनके सर्वोत्कृष्ट नाटक उत्तररामचरित में एक बार भी प्रयोग नहीं हुआ। कवि ने अपनी कृति उत्तररामचरित में[3] अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। जिन में उपमा, उत्प्रेक्षा, काव्यलिंग, रूपक और अर्थान्तरन्यास उनके प्रिय अलंकार है। इनमें भी उपमा अलंकार भवभूति को सर्वाधिक प्रिय है। इन सभी अलंकारों का सोदाहरण विवेचन किया जा रहा है।

उत्तररामचरित में शब्दालंकार

1.अनुप्रास अलंकार - शब्दालंकार में महाकवि भवभूति की विशेष रुचि अनुप्रास अलंकार की ओर ही रही है। यमक अलंकार तथा श्लेष अलंकार का उन्होंने बहुत कम प्रयोग किया है। उत्तररामचरित में अनुप्रास अलंकार के बहुत सुन्दर प्रयोग अनेक स्थलों पर हुए हैं, उनमें से कुछ उदाहरण निम्नलिखित है--

कूजत्कलान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः ।

यहां अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है। इस पंक्ति में प्रत्येक पद 'क' वर्ण से आरम्भ हो रहा है। उत्तररामचरित के द्वितीय अंक में एक अन्य स्थल पर अनुप्रास अलंकार का सुन्दर उपयोग उस समय हुआ है. जब शम्बूक राम के समक्ष कौंचवान् पर्वत का चित्र खींचता है नाटक के द्वितीय अंक में ही शम्बूक द्वारा 'कोंबवान् ' पर्वत का वर्णन हुआ है।
महाकवि भवभूति ने अपने नाट्य ग्रंथ में अनेकानेक अर्थालंकार का भी प्रयोग किया है।

2.उपमा अलंकार- अनिर्भिन्नोगभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।

यहां जानकीजन्य वियोग के कारण पूर्णोपमा नामक अलंकार है।

तथा

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।

उत्पीड इव धूमस्य मोहःप्रागावृणोति माम्।

यहां भी भवभूति ने सुन्दर उपमा का प्रयोग किया है। तृतीय अंक के अंत में तमसा की उक्ति के माध्यम से सुन्दर उपमा कवि ने प्रयुक्त किया है –

प्रत्युप्तस्येव दयितेतृष्णादीर्घस्य चक्षुषः।

मर्मच्छेदोपमैर्यत्नैःसंनिकर्षो निरुध्यते।।

यहां प्रत्युप्तस्येव में इव उत्प्रेक्षा सूचक है तथा मर्मच्छेदोपमै में यत्न मर्मच्छेद के सदृश है तथा उपमा शब्द के द्वारा उपमा अलंकार है।

अन्य प्रयोग

एको रसःकरुण एव निमित्त भेदात्.....।

अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समग्रम्।।

इस श्लोक में इव के द्वारा क्रियोत्प्रेश्रा है और यथा के द्वारा उपमा अलंकार है

3.रुपक अलंकार- महाकवि भवभूति ने सुन्दर उपमा सदृश रुपकादि अलंकारों का प्रयोग किया है उदाहरण द्रष्टव्य है **–**

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः ।

ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम् ।।

यहां सीता राम के शोक से केतकी पुष्पवत् शरद्कालीन धूप से मलिन हो रही हैं अतः यहां रुपक अलंकार है।

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः ।

तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कु- र्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ॥

यहां उपमा, रुपक तथा अर्थापत्ति नामक अलंकारों का संकर है।

4.उत्प्रेक्षा अलंकार- देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः । प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥

प्रनष्टमिव में इव क्रिया की उत्प्रेक्षा का सूचक है अतः यहां क्रियोत्प्रेश्रा अलंकार है।

5.स्वभावोक्ति अलंकार - इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्त - प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।

फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज- स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥

इस श्लोक में नदियों का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

भवभूति तृतीय अंक में राम के कथन से पुष्टि करते हैं कि हे सखी देखो इस बच्चे ने अपनी प्रियतमा को प्रसन्न करने की चतुरता भी सीख लिया है। अस्तु यहां स्वभावोक्ति अलंकार का सुन्दर चित्रण है–

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः

पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः ।

सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-

र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥

6.निदर्शनाअलंकार - भवभूति ने षष्ठ अंक में निदर्शना का सुन्दर निदर्शन कराया है –

शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरेयं

सैवोष्ठमुद्रा स च कर्णपाशः ।

नेत्रेपुनर्यद्यपि रक्तनीले

तथापि सौभाग्यगुणः स एव ॥

7.अर्थान्तरन्यास अलंकार- त्वमेव ननु कल्याणि ! संजीवय जगत्पतिम् । प्रियस्पर्शी हि पाणिस्ते तत्रैष निरतो जनः ॥[१]

यहां सामान्य कथन का विशेष से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

हे मंगलमयी तुम्हीं राम को होश में लाओ क्योंकि तुम्हारा स्पर्श उनको प्रिय है और राम तुम्हारे में ही अनुरक्त हैं।

8.तुल्ययोगिता अलंकार- उत्तररामचरितम् के पंचम अंक में भवभूति ने तुल्ययोगिता अलंकार का बहुत ही अद्भुत उद्धरण प्रस्तुत किया है।

इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च ।

भवन्त एवं जानन्ति रघूणां च कुलस्थितिम् ॥

इस श्लोक में इतिहास पुराण आदि अनेक पदार्थों का एक "जानन्ति"क्रिया से सम्बंध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार है।

9.काव्यलिंग अलंकार- ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः । यत्रोपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः ॥

सीता के उद्धार में पृथ्वी और गंगा सहायक हुईं अस्तु यहां काव्यलिंग अलंकार है। यहां भी विशिष्ट चमत्कार की प्रतीति होने से काव्यलिंग अलंकार है।

10.विशेषोक्ति अलंकार- भवभूति ने द्वितीय अंक के अन्त में विशेषोक्ति नामक अलंकार का प्रयोग किया है

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्का रवत्कीचक-

स्तम्बाडम्बरमू कमौकुलिकुल: क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरि: ।

एतस्मिन्प्रचलाकिनांप्रचलतामुद्वेजिता:कूजितै:-

रुद्वेलन्तिपुराणरोहिणतरुस्कन्धेषुकुम्भीनसा:।।

यहां हेतु के रहते हुए भी विशिष्ट फलाभाव ज्ञापित हो रहा है अत: यहां विशेषोक्ति नामक अलंकार है।

11.दृष्टांत अलंकार- पुरोत्पीडे तटाकस्य परीवाह: प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापेरेव धार्यते ॥

महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक में तमसा के उक्ति के माध्यम से कहा कि हे पुत्री यह उचित है दु:खी जनों को अपना दु:ख शान्त करना ही चाहिए शोकजन्य क्षोभ में हृदय विलाप के द्वारा ही बचाया जा सकता है अत: यहां कवि तर्कसंगत दृष्टांत प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष - आदिकवि वाल्मीकि तथा महाकवि भवभूति दोनों ही संस्कृत-साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्रों में से हैं। दोनों ही कवियों ने उत्कृष्टतम काव्य कृतियों की रचना की है। तथा अपनी काव्यकृतियों आदिकाव्य रामायण एवं उत्तररामचरित नाटक को विभिन्न अलंकारों द्वारा शोभनीय बनाया है। दोनों महाकवियों वाल्मीकि एवं भवभूति ने अपनी कृतियों में सुन्दर अलंकार योजना का निदर्शन किया है।

आदिकवि वाल्मीकि की कृति रामायण संस्कृत-साहित्य की प्रथम कृति है। अत: उसमें अलंकार इत्यादि तत्वों का प्रारम्भिक रूप दिखलाई पड़ता है। वह एक ऐसे काल की रचना है जब अलंकार विषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं थे। अतएव अलंकारों का प्रारम्भिक रूप होने के कारण रामायण में अलंकारों में जटिलता एवं संकीर्णता का समावेश नहीं हुआ है। उसमें अलंकार अत्यन्त सरल एवं सहज रूप में प्राप्त होते हैं। अलंकारों में स्वाभाविकता एवं सहजता दृष्टिगत होती है, जिसके लिए वाल्मीकि को पृथक् प्रयास नहीं करना पड़ा।

महाकवि भवभूति का उत्तररामचरित उस समय की रवना है जबकि साहित्यशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। उनका स्पष्ट प्रभाव भवभूति की रचना पर दृष्टिगोचर होता है। रामायण की अपेक्षा उत्तररामचरित के अलंकारों में अधिक जटिलता एवं संकीर्णता दिखलाई पड़ती है। उत्तररामचरित में अलंकारों का परिपक्व रूप मिलता है। यद्यपि महाकवि भवभूति में कहीं-कहीं कृत्रिमता के दर्शन होते हैं।

शब्दालंकारों में दोनों ही कवियों ने अनुप्रास अलंकार में विशेषरूचि दिखलाई है। रामायण में उत्तररामचरित दोनों ही रचनाओं में अनुप्रास का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। वाल्मीकि रामायण में अन्य शब्दालंकारों का भी समुचित प्रयोग हुआ है। परन्तु उत्तररामचरित में अन्य शब्दालंकारों का कम ही प्रयोग उपलब्ध होता है। श्लेष जैसे शब्दालंकार का तो प्रयोग हुआ ही नहीं है।

अर्थालंकारों में दोनों महाकवियों ने उपमा अलंकार को बहुलता से प्रयुक्त किया है। दोनों की उपमायें सर्वथा नवीन एवं मौलिक हैं। उत्तररामबरित की यह विशेषता है। कि उसमें एक ही पद्य में अनेक अलंकारों के प्रयोग का बाहुल्य है। अर्थात् उनके स्थलों पर संसृष्टि एवं संकर अलंकारों का प्रयोग हुआ है, जबकि वाल्मीकि रामायण में यह बहुत अल्प स्थलों पर उपलब्ध होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. संस्कृत साहित्य 20वीं शताब्दी (प्रो राधा वल्लभ त्रिपाठी) राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली (1999)

2. अभिनवकाव्यशास्त्रम् – (डॉ शंकरदेव अवतरे) साहित्य सहकार, 29/62 वी, गली नं 11 विश्वास नगर दिल्ली – 110321।
3. अलङ्कारसर्वस्वम् – (श्रीराजानक रुय्यक) चौखम्भा सुरभारती प्रकाश, के. 37/117 गोपाल मन्दिर लेन वाराणसी – 221001 ।
4. आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र (डॉ आनन्द कुमार श्रीवास्तव) इस्टर्न बुक लिंगर्स 5825 न्यू चन्द्रावल जवाहर नगर दिल्ली– 1990 ।दिल्ली ।
5. औचित्यविचारचर्चा (आचार्य क्षेमेन्द्र) रंजित प्रिंटर एवं पब्लिशर्स
6. काव्यप्रकाश (आचार्य मम्मट) आचार्य विश्वेश्वर ज्ञान मण्डल लिमिटेए वाराणसी।
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास (आचार्य बलदेव उपाध्याय) शारदा संस्थान वाराणसी ।
1. वाल्मीकि रामायण मूल पाठ
2. वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्यांकन –रामप्रकाशअग्रवाल
3. रामायणकालीन संस्कृति–शान्तिकुमार नानूराम
4. राम कथा –कामिल बुल्के
5. उत्तररामचरितम्–कपिलदेव द्विवेदी